ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-12* January- 2018
Innovation The Research Concept

धर्म बनाम जातिवाद : यू.आर. अनन्तमूर्ति के उपन्यास संस्कार की विवेचना

प्रीतम सिंह
प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, कनीपला
कुरुक्षेत्र, हरियाणा

सारांश

आज भी अगर भारतीय समाज में कोई ऐसी व्यवस्था है जिसकी वजह से सबको शर्मसार होना पड़ता है तो वह है जातिवाद। इस व्यवस्था के विरुद्ध कई महापुरुषों ने लड़ाई लड़ी, परन्तु अंत में जाति व्यवस्था को हराने में वो असफल रहे। जातिवाद को आज की राजनीतिक व्यवस्था ने और अधिक मजबूत कर दिया है। आज के साहित्य में भी हमें कई ऐसे लेखक मिलते हैं जिन्होंने इस व्यवस्था के विरुद्ध संग्राम छेड़ रखा है। ऐसे ही एक लेखक यू. आर अनन्तमूर्ति हैं, उन्होंने अपने उपन्यासों के जरिये समाज की इस व्यवस्था के विरुद्ध न केवल जागरूक किया है अपितु ये भी समझाया है कि जातिवाद का कुप्रभाव केवल तथाकथित निम्न जाति के लोगों पर नहीं होता अपितु उच्च जाति के लोगों पर भी इसका कुप्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत शोधपत्र उनके उपन्यास संस्कार की विवेचना है।

मुख्य शब्द : जाति, धर्म, ब्राह्मण, दलित।

प्रस्तावना

जाति संभवतया भारतीय सामाजिक व्यवस्था का वह पहलू है जिसका सर्वाधिक अध्ययन पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किया गया है। जाति का पाश्चात्य विद्वानों द्वारा न केवल अध्ययन किया गया है, अपितु इसकी सर्वाधिक विवेचना भी की गई है। जातिवाद के सभी विवेचन इस बात पर सहमत हैं कि यह मानव द्वारा मानव के दमन के लिए अविष्कार किया गया, जो सबसे सफल, दीर्घजीवी एवं लचीली व्यवस्था है। भारतीय समाज की दूसरी संस्थाएँ जैसे कि संयुक्त परिवार व्यवस्था इत्यादि आधुनिक अर्थोपार्जन के तरीकों के सामने और अर्थव्यवस्था के सामने दम तोड़ते जा रहे हैं, परन्तु जातिवाद महाभारत के चिरंजीवी पात्र अश्वत्थामा की तरह आधुनिक व्यवस्थाओं के सामने दुर्बल अवश्य हुआ है परन्तु समाप्त नहीं।

जाति के सामने कैसे मनुष्य असहाय है, यह बात इसी बात से समझी जा सकती है कि यह व्यवस्था बहुत से धर्मों से भी पुरातन है। छठी शताब्दी में भगवान बुद्ध ने इस व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई जिसका परिणाम बौद्ध धर्म के रूप में सामने आया। भगवान बुद्ध का ''जाति उत्पीड़न के विरुद्ध यह अभियान एक विश्व धर्म (बौद्ध धर्म) की स्थापना में तो सफल हुआ, परन्तु जाति व्यवथ्था के सामने यह असफल हो गया। मध्यकालीन भारत में कई भक्ति कवियों, संतों और धार्मिक नेताओं ने इसके खिलाफ अभियान छेड़ा, कबीर, नानक एवं बसेश्वर जैसे संत कुछ हद तक सफल भी रहे, परन्तु इसका उन्मूलन नहीं हो सका। आधुनिक काल में ज्योतिबा फुले, नारायण स्वामी और बाबा साहब जैसे समाज सुधारकों ने भी इसके विरुद्ध अपना अभियान छेड़ा।

जातिवाद की सफलता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि कुछ लोगों ने इससे बचने के लिए धर्म परिवर्तन किया परन्तु जातिवाद ने यहाँ भी लोगों का पीछा नहीं छोड़ा। उन्होंने अपनी पूजा पद्धति तो बदल ली, परन्तु वे जातिवाद को अपने साथ अपने नये अपनाये हुए पंथ में भी ले गये। इस विषय में विख्यात समाजशास्त्री श्री निवास लिखते हैं :–

इन तथाकथित नीची जाति के लोगों का इस्लाम एवं इसाईयत में मत परिवर्तन भारत के कई भागों में हुआ। पंजाब के कुछ लोग सिख और उत्तर प्रदेश में कुछ लोग आर्य समाजी हो गए। ये सभी मत परिवर्तन नीच जाति के तमगे से बचने के लिए थे। परन्तु शीघ्र ही इन मतान्तरित लोगों को समझ आ गया कि जाति को त्यागना इतना सरल नहीं है, अपितु जाति उन लोगों के साथ उनके नये अपनाये मतों में भी चली गई। भारतीय इस्लाम और इसाइयत में जातिवाद की छाप साफ–साफ दृष्टिगोचर होती है। भारतीय इस्लाम और इसाइयत में भी जातिवाद, हिन्दू धर्म के समान ही विद्यमान है। (80)

16 दिसम्बर 2016 को भारतीय समाचार पत्र द इंडियन एक्सप्रैस के अनुसार :–

भारतीय कैथोलिक चर्च के एक करोड़ 90 लाख सदस्यों में से एक करोड़ बीस लाख दलित हैं, परन्तु 5000 पादरियों में से दलित पादरी केवल 12 ही हैं। (Indianexpress.com/article/opinion/editorials/Catholic-Church dalit Christians untouchability - discrimination 442025)

जातिवाद ने स्वयं को लोकतंत्र (संभवतया लोकतंत्र की वोट बैंक राजनीति से जातिवाद और मजबूत हुआ है), संवैधानिक अधिकार, आधुनिक यातायात के साधन, आधुनिक शिक्षा के विरुद्ध स्वयं को बचाये रखा है। संभवतया जातिवाद के इस लचीलेपन की वजह से बहुत सारे समाज शास्त्रियों ने इसकी उत्पत्ति और खात्मे के लिए सिद्धान्त दिए हैं।

यू.आर अनन्तमूर्ति, जो कि स्वतन्त्रता के बाद के सबसे महत्त्वपूर्ण भारतीय लेखकों में से एक हैं, जातिवाद के प्रखर आलोचक हैं। उनका लेखन इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि वे स्वयं एक ब्राह्मण हैं। उनके लेखन में जातिवाद के प्रति एक ऐसे व्यक्ति का नजरिया है जिसे कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं, जो कि जातियों के इस पिरामिड के सर्वोच्च शिखर पर स्थित है और एक ऐसी जाति से सम्बन्ध रखते हैं जिसको कि इस जातिवादी कुरीति का जन्मदाता माना गया है। उन्हें कई बार "ब्राह्मणवाद पर आक्रमण करने का दोषी कहा गया। उनके अधिकतर (Mukherjee 2008) उपन्यासों में जातिवाद के दंश को उजागर किया गया है। जातिवाद कैसे स्वतंत्र भारत में लोगों को पक्षपात के लिए प्रेरित करता है, यह उनके उपन्यासों में सब जगह दृष्टिगोचर होता है। जातिवाद की तमाम बुराईयों को उजागर करते हुए अनंतमूर्ति जातिवाद को समाप्त करने की थ्योरी भी अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

'संस्कार' अनन्तमूर्ति का वह गौरव ग्रन्थ है जिसमें उन्होंने जातिवाद की विभीषिका को उजागर किया है। 'संस्कार' में जातिवाद की समाप्ति के लिए उन्होंने जो थ्योरी प्रस्तुत की उसके केन्द्र में ब्राह्मण हैं। इस उपन्यास में लेखक चाहता है कि ब्राह्मण जातिवाद के प्रति अपना नजरिया बदलें। 'संस्कार' का नायक नारायण्पा है जो स्वयं एक ब्राह्मण है, परन्तु साथ ही साथ एक क्रान्तिकारी भी, जो जातिवाद को नष्ट करना चाहता है। परन्तु वह स्वयं कुछ करने की बजाय प्राणिश्चार्य के अनुज का रोल करने के लिए तैयार है। नारायण्पा को पता है कि प्राणिश्चार्य एक वैदिक विद्वान है जो लोगों का नजरिया बदलने का प्रभाव रखते हैं। आचार्य को उत्तेजित करने के लिए नारायण्पा प्रत्येक रीति–रिवाज का हनन करता है, शराब पीता है, मांस खाता है और भगवान की पवित्र मूर्ति का भी अपमान करता है। परन्तु जो काम वह अपने जीवन में करना चाहता है, उसे वह अपनी मौत के जरिये पूरा कर पाता है। इस उपन्यास में समस्त क्रिया–प्रतिक्रिया ब्राह्मणों पर ही केन्द्रित है और उपन्यास में लेखक चाहता है कि जातिवाद के आत्मघाती खतरों के प्रति ब्राह्मण स्वयं जागें और जातिवाद का नाश करें।

परन्तु 'संस्कार' उपन्यास सभी अन्य गौरव ग्रन्थों की तरह केवल एक विषय वस्तु तक ही केन्द्रित नहीं है। उपन्यास में हिन्दू धर्म के सामाजिक और आध्यात्मिक पहलुओं की भी विवेचना है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि धर्म का प्रमुख लक्ष्य मोक्ष है। मोक्ष प्राप्ति करने के लिए मनुष्य कई तरह के रीति–रिवाज एवं पूजा–विधियों का प्रयोग करता है। धर्म केवल आध्यात्मिक जीवन नहीं अपितु सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करता है। धर्म मनुष्य को प्रभावित करता है। धर्म का प्रभाव मनुष्य के जन्म से पूर्व आरम्भ होकर मृत्यु उपरांत कई वर्षों तक चलता है। मनुष्य की मनोवैज्ञानिक उन्नति में धर्म की एक बड़ी भूमिका होती है और कई मुख्य निर्णयों को प्रभावित करता है जैसे कि विवाह। धर्म के संबंध में जाति एक मुख्य भूमिका अदा करती है। यू.आर. अनन्तमूर्ति ने भी अपने गौरव ग्रन्थ संस्कार में धर्म एवं जाति की विवेचना की है।

संस्कार से पहले जितने भी विवेचनात्मक अध्ययन हुए उनमें जातिवाद के तथाकथित निम्न जातियों पर दुष्प्रभाव की बात की गई परन्तु अनन्तमूर्ति दिखाते हैं कि जातिवाद का दुष्प्रभाव केवल उत्पीड़ित पर ही नहीं अपितु उत्पीड़क पर भी पड़ता है। समाज शास्त्रियों ने जातिवाद का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से करने के प्रयास किये हैं परन्तु अनन्तमूर्ति का दृष्टिकोण केवल साहित्यिक है। वे किसी भी घटना का केवल वर्णन करते हैं और उसकी व्याख्या का कार्य पाठकों पर छोड़ देते हैं। इस शोधपत्र में उपन्यास का इसी दृष्टि से विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है।

उपन्यास पढ़ने पर पाठक यह समझ जाते हैं कि जातिवाद की वजह से ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ दर्जा प्राप्त है परन्तु इस दर्जे को बनाये रखने के लिए उन्हें कई तरह के क्रियाकलाप, रीति–रिवाजों का निर्वहन करना पड़ता है जिसकी वजह से जीवन बहुत पेचीदा बन जाता है। ब्राह्मणों का जीवन अत्यधिक पेचीदा है और तथाकथित निम्न जातियों का जीवन बेहद सरल है जिसमें तरह–तरह के रीति–रिवाजों की पेचीदगियों को कोई स्थान नहीं है और वे इनसे सर्वथा मुक्त हैं। उपन्यास का शीर्षक संस्कार भी यही दर्शाता है। संस्कार का एक अर्थ है मृतक शरीर का अन्तिम संस्कार। ब्राह्मणों के लिए अन्तिम संस्कार एक बेहद पेचीदा काम है क्योंकि कोई भी ब्राह्मण तब तक कुछ भी खा–पी नहीं सकता जब तक कि मृतक के शरीर का अन्तिम संस्कार नहीं हो जाता। संस्कार (उपन्यास) के सारे कथानक का मूल ही नारायण्पा के मृतक शरीर से उपजी हुई पेचीदगियां हैं। मृतक शरीर का अन्तिम संस्कार करने से पहले कई तरह के रीति–रिवाज करने पड़ते हैं परन्तु कोई भी ब्राह्मण इन रीति–रिवाजों का निर्वहन करने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि नारायण्पा ने अपने जीवन काल में ब्राह्मण का जीवन नहीं जिया था। अपितु उसने तो एक ऐसे व्यक्ति का जीवन जिया था जो सभी ब्राह्मण रीति–रिवाजों का विरोध करता था और ब्राह्मणों के लिए बनाये गये सभी नियमों की अवहेलना करता था। अतः अग्रहारा के सभी ब्राह्मण इस बात से आशंकित हैं कि नारायण्पा का अन्तिम संस्कार करने से उनका ब्राह्मणत्व भी खतरे में आ जायेगा। परन्तु ब्राह्मणों

की तुलना में तथाकथित निम्न जातियों का तरीका बिल्कुल सरल है। उन्हें कुछ खोने का डर नहीं है। जब उनके यहां किसी की मृत्यु हो जाती है तो वे झोंपड़ी में मृतक शरीर को छोड़ कर झोंपड़ी को ही अग्नि के हवाले कर देते हैं। (संस्कार पत्र) जब यह उपन्यास प्रकाशित हुआ तो इससे विवाद भी पैदा हुआ था। यू.आर. अनन्तमूर्ति ने स्वयं एक ऐसी घटना का वर्णन करते हुए लिखा है :

मुझे स्मरण आता है कि एक विनम्र महिला जो कि बहुत सेवा भाव वाली थी, जब मैं उसके यहां भोजन करके उठने लगा तो वह बोली, ''अब हमें कोई पसन्द नहीं करता। तुम हमारा मजाक क्यूं उड़ाते हो? अगर ।

तुमने किसी और जाति के लोगों का मजाक उड़ाया होता तो क्या तुम जीवित बचते? क्योंकि हम सहनशील हैं इसीलिए तुम हमारा मज़ाक उड़ाते हो। क्या यह करना उचित है? (2005.3)

इस बात में कोई संशय नहीं है कि इस उपन्यास में ब्राह्मणों को बहुत नकारात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। दुर्वासापुरा नामक अग्रहारा में पाठकों को कोई ऐसा ब्राह्मण पात्र नहीं मिलता जिसके बारे में कुछ अच्छा लिखा गया हो। अग्रहारा के सभी ब्राह्मण लालची एवं चरित्रहीन हैं, यद्यपि प्राणिश्चार्य एकमात्र अपवाद प्रतीत होते हैं। अग्रहारा के सभी ब्राह्मणों के शरीर कुरूप हैं और वे सभी तरह के पाप कर्मों में लिप्त हैं जिनमें मुख्य हैं ''लोलुपता का पाप, लोभ का पाप और स्वर्ण से प्यार का पाप' (संस्कार 24) यद्यपि ब्राह्मण नरों का चित्रण फिर भी सकारात्मक लगता है क्योंकि उपन्यास में नरों की तुलना के लिए कोई भी दलित नर दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु ब्राह्मण स्त्रियों का चित्रण सर्वथा हानिकारक है क्योंकि उनको ''थुल–थुल नारी और गोल मटोल'' (संस्कार 31) बताया गया है और उनकी गाल ''पिचकी हुई'' वक्षस्थल ''मुरझाये हुए'' और उनके मुंह ''दाल की बदबू से भरे हुए'' (संस्कार 37) बताये गए हैं। उपन्यास में ब्राह्मण स्त्रियां ऐसे अलैंगिक जीवों के रूप में चित्रित की गई हैं जिनमें स्त्रियों वाली कोई भी बात नहीं है। ब्राह्मण स्त्रियां शारीरिक रूप से तो कुरूप हैं ही, उनके हृदय भी कलुषित हैं जो सदा स्वर्ण और संपत्ति हड़पने के उपाय सोचती रहती हैं। दूसरी तरफ दलित स्त्रियां सुन्दरता के प्रतीक के रूप में वर्णित की गई हैं। उपन्यास में चन्द्री एक ''अतुलनीय सुन्दरी'' (संस्कार 38) के रूप में प्रस्तुत की गई है। अपने दोस्तों को चन्द्री के बारे में बताते श्री पति कहता है, ''पूरे एक सौ मील की त्रिज्या में मुझे चन्द्री जैसी सुन्दर लावण्यमयी गुड़िया अगर आप दिखा दें तो मैं मान जाऊँगा कि आप मनुष्य हैं?'' (संस्कार 38) ब्राह्मण स्त्रियो की तुलना चन्द्री और बेली जैसी दलित स्त्रियों से की गई है जो न केवल सुन्दर है बल्कि विश्वासपात्र, त्यागी और स्वर्ग हृदय वाली है। चन्द्री नारायणपा के अन्तिम संस्कार के लिए सभी स्वर्ण आभूषणों का त्याग करने के लिए तैयार है और ब्राह्मण स्त्रियों में उन स्वर्ण आभूषणों को पाने के लिए होड़ मच जाती है। यहां पर ब्राह्मण स्त्रियों को कुरूप और अलैंगिक जीवों के तौर पर प्रस्तुत करना थोड़ा अटपटा अवश्य लगता है क्योंकि 20वीं शताब्दी में हिन्दी सिनेमा में अपना सिक्का चलाने वाली ज्यादातर स्त्रियां ब्राह्मण थी जैसे कि हेमामालिनी, वैजयन्ती माला, मौसमी चटर्जी, सोनाली बेन्द्रे, उर्मिला इत्यादि। यहाँ पर उपन्यासकार के स्वयं के विचार उपन्यास के चरित्रों पर हावी होते दिखाई देते हैं। उपन्यासकार का यह पक्षपात उनके सारे लेखन में दृष्टिगोचर होता है। उनकी एक कहानी ''प्रश्न'' में शारदा जो कि एक ब्राह्मण लड़की है उसे ''संगमरमर का मकबरा (प्रश्न 54) और दलित लड़की लच्छी को ''पानी पर जलते हुए कपूर'' (प्रश्न 54) के रूप में दर्शाया गया है। लच्छी का वर्णन करते हुए उपन्यासकार आगे लिखते हैं :–

''लच्छी एक बहुत अच्छी लड़की थी। सचमुच बहुत अच्छी; जैतून जैसे रंगत वाली, सीधे नुकीले नाक वाली, गोल नितम्बों वाली, कोमल, बहुत ही कोमल। जब वह केले उठाकर बाग में चलती तो देखने वाला बाग–बाग हो जाता था। वह चलती नहीं थी बल्कि उछलती थी। उन्मुक्त हंसी, शब्द और अदाएं जैसे चाशनी में डूबे हों। उसका शरीर और हाव–भाव मादकता से मदमदाते थे, उसकी संगत में आराम महसूस होता था और लगता था कि खुश रहना कोई पाप नहीं है। उसकी सुन्दरता ऐसी थी कि लगता था कि संभोग में कुछ भी घिनौना और पापयुक्त नहीं है .... वह एक सच्ची और सम्पूर्ण स्त्री थी, एक सौ प्रतिशत। वह शारदा जैसी बिल्कुल नहीं थी। (प्रश्न 58)

अपने इस चित्रण के माध्यम से उपन्यासकार संभवतया यह दर्शाना चाहते हैं कि सुन्दर शरीर के लिए स्त्रियों का काम करना, मेहनत करना, आवश्यक है। दलित स्त्रियां मेहनत करती हैं इसलिए उनकी काया सुन्दर है। ब्राह्मण स्त्रियां मेहनत नहीं करती, इसलिए वे ''थुलथुल'' हैं।

इस उपन्यास में एक बात समझने वाली है कि अनन्तमूर्ति ब्राह्मणों का चित्रण नकारात्मकता से नहीं करते, अपितु वे एक ऐसे समाज के विरुद्ध लिखते हैं जो अस्पृश्यता को मानती है, उसे बढ़ावा देती है। अपने व्यक्तिगत जीवन में भी वे जाति प्रथा के घोर विरोधी रहे हैं। अपने उपन्यास भारतीपुरा के प्राक्कथन में उन्होंने लिखा है –

यदि आप मुझसे पूछेंगे कि भारतीय सभ्यता में क्या सबसे बुरा है, तो मैं कहूंगा अस्पृश्यता। मैं दासता समझ सकता हूँ। एक गुलाम के पास लड़ने का अवसर होता है – परन्तु अस्पृश्यता अपने अन्तर्मन का हिस्सा बन जाती है और उत्पीड़ित व्यक्ति धीरे–धीरे सोचने लगता है कि वह सचमुच हीन है, अस्पृश्य है।

कई विद्वानों ने तर्क दिया है कि जाति प्रथा हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है, लेखक को भी इस बात का भान था। इसलिए वे अपने एक निबन्ध ''मेरे लेखन के पांच दशक'' में लिखते हैं, ''जिस जगत में मैं पला, बढ़ा, उसमें लोग समझते थे कि जातिवाद और वर्ण व्यवस्था चट्टान की अविचल और प्रभु द्वारा निर्मित है।'' (17) इन किंवदंतियों को लेखक प्राणिश्चार्य के चरित्र के जरिये तोड़ते हैं। अनन्तमूर्ति दिखाते हैं कि यदि प्राणिश्चार्य जैसा विद्वान धर्म को समझने में चूक कर सकता है तो अन्य लोग भी धर्म की व्याख्या करने में त्रुटि कर सकते हैं।

उपन्यास में प्रणिश्चार्य एक घटना का वर्णन करते हैं। एक कथा सुनाते हैं जिसमें एक ब्राह्मण ''यज्ञ आदि धार्मिक क्रिया कलापों से प्रतिबन्धित कर दिया गया'' (संस्कार 48) क्योंकि वह एक जुआरी था, परन्तु भगवान् उस जुआरी की पुकार पर प्रकट हुए। यह घटना साफ तौर पर यह दर्शाती है कि जब भगवान एक जुआरी की पुकार पर प्रकट हो सकते हैं तो वे किसी भी मनुष्य के साथ पक्षपात नहीं कर सकते और न ही किसी मनुष्य को अस्पृश्य बना सकते हैं। यह अस्पृश्यता केवल मनुष्यों द्वारा निर्मित है, दूसरे मनुष्यों का उत्पीड़न करने के लिए। प्राणिश्चार्य स्वयं भी प्रदूषण और छुआछूत में विश्वास करते दिखाई पड़ते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ में वे चन्द्री से बात नहीं करते क्योंकि उन्हें अपवित्र हो जाने का भय है (संस्कार 2) उपन्यास के अन्त में मन्दिर में बैठकर भोजन नहीं करना चाहते क्योंकि अपनी पत्नी की मौत के कारण वे प्रदूषित हैं और वहां के लोगों का विश्वास है कि यदि कोई प्रदूषित व्यक्ति मन्दिर में बैठ कर भोजन करेगा तो मन्दिर का रथ रुक जायेगा। प्राणिश्चार्य भोजन करते हैं, परन्तु रथ नहीं रुकता। अतः प्रदूषण की धारणा एक मिथक ही सिद्ध होती है। इसी तरह से अस्पृश्यता भी इस बात पर आधारित है कि कुछ मनुष्य जन्म से ही निकृष्ट होते हैं। यह धारणा सर्वथा अनुचित है और ऐसी मिथ्या धारणाओं का खण्डन करना समाज के लिए अति आवश्यक है। लेखक ने ऐसे विचार अपने कई लेखों में भी प्रकट किये हैं। अपने एक निबन्ध में वे लिखते हैं, ''हिन्दू धर्म का अर्थ भिन्न–भिन्न लोगों के लिए भिन्न है। इसमें निर्गुण ब्रह्मा की भक्ति भी है और इसी में व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति हेतु व्रतों का भी प्रावधान है। इसमें यह भी कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य साक्षात ईश्वर का प्रतिबिम्ब है और इसी में बहुत ही सख्त और अमानवीय जाति प्रथा भी विद्यमान है।''(365) अनन्तमूर्ति का यह कथन उन लोगों का दोगलापन दर्शाता है जो जाति प्रथा में विश्वास रखते हैं। लेखक यह प्रश्न पूछते हैं कि यदि प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का प्रतिबिम्ब है तो कोई भी मनुष्य अस्पृश्य कैसे हो सकता है?

वे व्यक्ति जो यह घोषित करते हैं कि जातिवाद को धर्म का संरक्षण प्राप्त है वे अक्सर अपनी बात को सिद्ध करने के लिए मनुस्मृति का सहारा लेते हैं। अनन्त मूर्ति ने भी उपन्यास में मनुस्मृति का जिक्र किया है। परन्तु यह बात समझने की है कि हिन्दू धर्म का प्रारम्भ मनुस्मृति के साथ नहीं हुआ। हिन्दू धर्म एक प्रगतिशील परम्परा का द्योतक है और इसने समय के साथ होने वाले परिवर्तनों को अपने अन्दर आत्मसात किया है। अतः हिन्दू धर्म की व्याख्या केवल मात्र मनुस्मृति के आधार पर करना उचित नहीं है। हिन्दू धर्म में बहुत सारे ग्रन्थ हैं और ये सब स्वतंत्र भी हैं और आपस में जुड़े हुए भी हैं। उदाहरणार्थ यदि कोई महाभारत में श्रीकृष्ण की मृत्यु का रहस्य जानना चाहता है तो उसे रामायण पढ़नी पड़ेगी। अतः मनुस्मृति के कुछ श्लोकों की वजह से यह घोषणा कर देना कि जाति प्रथा और अस्पृश्यता को धार्मिक संरक्षण प्राप्त है, सर्वथा अनुचित होगा। यह घोषणा करने से पहले अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करना भी बहुत आवश्यक है। उदाहरणार्थ ऋग्वेद का एक श्लोक कर्म आधारित जाति की बात करता है :

कारूरहं ततो भिषुगुपलप्रक्षिणी नाना
नानाधियो वसूयवोऽनु गाईव तस्थिमेन्द्रायिन्दो परिस्रव।
(ऋग्वेद 9/112/3)

इस श्लोक से पता चलता है कि एक ही परिवार के तीन अलग–अलग कार्यों में लिप्त है अर्थात एक ही घर की तीन–तीन जातियां उपस्थित हैं। इसी तरह से श्रीमद्भवद्गीता में भी भगवान श्री कृष्ण कहते हैं :

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः
तस्य कतरिमपि मां वि द्धयकतरिमन्ययम्। (4.13)

अर्थात भगवान बताते हैं कि चार वर्णों का यह सिस्टम उनके द्वारा ही उत्पन्न किया गया है परन्तु इसका आधार गुण व कर्म है, जन्म नहीं। हिन्दू धर्म के दो सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ इस बात को नकारते हैं कि जाति का आधार कर्म है। इन सब में एक बात और महत्त्वपूर्ण है कि हिन्दू धर्म में दो प्रकार के ग्रन्थ हैं श्रुति और स्मृति और जब भी इन दोनों प्रकार के ग्रन्थों में किसी प्रकार का विरोधाभास होता है तो श्रुति को श्रेष्ठ और प्रामाणिक माना जाता है। अतः यदि ऋग्वेद और मनुस्मृति में विरोधाभास है तो ऋग्वेद अधिक प्रामाणिक होने के कारण अधिक मान्य है। जाति कर्म पर आधारित है न कि जन्म पर, इस बात पर महाभारत में भी जोर दिया गया है : ''जो शूद्र हमेशा स्वयं की इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखता है, सत्य बोलता है और धर्म का आचरण करता है, मैं उसे ब्राह्मण मानता हूँ। (नाडकर्णी 4783)

पुराने समय में जाति प्रथा चलायमान थी, गतिशील थी, कर्म के आधार पर जाति का निर्धारण होता था। परन्तु जैसे खड़ा हुआ पानी दुर्गन्ध देने लगता है उसी तरह स्थित जाति प्रथा ने समाज को दुर्गन्ध से भर दिया। इस स्थिर समाज की हानि समाज के सभी वर्गों को उठानी पड़ी जिनमें ब्राह्मण समाज भी शामिल था। अनन्तमूर्ति दिखाते हैं कि किस तरह श्रेष्ठता का ढोंग बनाये रखने के लिए ब्राह्मण समाज रूढ़ियों और आडम्बरों से घिरा रहा और समाज का सामाजिक पतन होता रहा। अपनी श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए और झूठे दिखावे के लिए ब्राह्मण समाज एक ऐसा समाज बन गया जिसका उत्पादन में शून्य योगदान था। ब्राह्मण समाज केवल ''मृत्यु भोज'' (संस्कार 36) तक सीमित रहा और आधुनिक व्यवसायों के प्रति घोर उदासीन रहा। संस्कार में अनन्तमूर्ति पाठकों का साक्षात्कार एक ऐसे ब्राह्मण समाज से कराते हैं जो आधुनिकता का घोर विरोधी है और अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए काल ग्राह्य व्यवसायों और रूढ़ियों में उलझा हुआ है। इस समाज में आधुनिक व्यवसाय प्रतिबन्धित हैं और आधुनिक व्यवसाय अपनाने वाले मनुष्यों को समाज से बाहर का रास्ता दिखा दिया जाता है।

संस्कार में नारायणप्पा न केवल ऐसे सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करता है, अपितु युवा ब्राह्मणों को आधुनिक व्यवसाय अपनाने के लिए प्रोत्साहित भी करता है। वह युवाओं को एक नाट्य मण्डली शुरू करने के लिए प्रोत्साहित करता है जो कि रूढ़िवादी ब्राह्मणों के लिए पाप है। नारायणप्पा को समाज से बाहर कर दिया जाता है

क्योंकि वह एक आधुनिक विचारधारा का व्यक्ति है। एक रूढ़िवादी, पुरातन विचारधारा वाला समाज नारायण्पा को समायोजित नहीं कर पाता और उसे अपना विरोधी बना लेता है :

किसने गरूड के बेटे को घर से भाग जाने और सेना में जाने के लिए उकसाया? नारायण्पा ने और किसने?

प्राणिश्चार्य ने उस बालक को वैदिक ग्रन्थों का ज्ञान दिया था, परन्तु अन्त में उसने वही किया जो नारायण्पा ने कहा ...। (संस्कार 10)

समाज में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं और नारायण्पा के रूप में अनन्तमूर्ति हमें एक ऐसे युवक से मिलवाते हैं जो अपने ब्रह्मत्व की पवित्रता को बचाये रखने के लिए रूढ़ियों में बंधने के लिए तैयार नहीं है। उसे आधुनिक व्यवसाय चाहिए, रहन–सहन चाहिए, आधुनिक शिक्षा चाहिए, परन्तु पुरानी पीढ़ी इस परिवर्तन के लिए तैयार नहीं है। वह अपनी जाति की श्रेष्ठता को बनाये रखने के लिए रूढ़ियों के दमघोटू वातावरण में सिसक रही है।

पुरातनकाल में शिक्षा देने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को होता था, परन्तु आधुनिक समय में शिक्षा सबके लिए उपलब्ध है और कोई भी व्यक्ति शिक्षक बन सकता है। अतः अब किसी भी एक व्यवसाय अथवा मात्र कर्मकाण्ड से जीविकोपार्जन कठिन कार्य है। अतः अनन्तमूर्ति बताते हैं कि ब्राह्मणों को भी अब अपनी श्रेष्ठता के खोल से बाहर आकर आधुनिक व्यवसाय अपनाने चाहिए। अन्यथा वे इस समाज में पिछड़ जाएंगे। यह पिछड़ापन पाठकों को संस्कार में सब जगह दिखाई पड़ता है। अनन्तमूर्ति के अनुसार ब्राह्मणों का सीमित दायरा उन्हें अन्य विषयों के बारे में सोचने का, समझने का अवसर नहीं देता। संस्कार में प्राणिश्चार्य प्रकाण्ड पंडित है। वेदों के ज्ञान में उनका कोई सानी नहीं (संस्कार 6), परन्तु वेदों का यह प्रकाण्ड पंडित प्लेग के लक्षणों को पहचानने में अक्षम है। दूसरी तरफ मंजय्या जो कि समर्थ ब्राह्मणों (जो कि निम्न कोटि के ब्राह्मण हैं) का मुखिया है, वह इन लक्षणों को प्लेग के रूप में पहचान लेता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. जातिवाद का तथाकथित निम्न और उच्च जातियों पर प्रभाव
2. धर्म में जातिवाद की व्याख्या
3. धर्म में अस्पृश्यता की मान्यता

निष्कर्ष

उपन्यास में जाति की कट्टरता का आर्थिक उन्नति के साथ भी सीधा सीधा रिश्ता दिखाया गया है। जो समाज जितना अधिक कट्टर है वह उतना ही निर्धन है। समर्थ ब्राह्मण जो कि इतने कट्टर नहीं हैं और ''कर्मकाण्ड के प्रति पागल'' (संस्कार 13) नहीं है वे आर्थिक रूप से अधिक सक्षम एवं समर्थ हैं। उन्होंने आधुनिक व्यवसायों को अपना लिया है और वे सुपारी की खेती करने में माहिर हैं (संस्कार 13)। दूसरी ओर माधव ब्राह्मण जिनका प्रतिनिधित्व प्राणिश्चार्य करते हैं, वे निर्धन हैं क्योंकि वो आज भी पारम्परिक व्यवसायों में लगे हैं। उनकी कट्टरता उन्हें अपनी श्रेष्ठता के खोलों से बाहर नहीं आने देती और निर्धनता से अभिशापित रहते हैं। अतः उपन्यास में ब्राह्मणत्व एक उत्पीड़क और शोषक के तौर पर उपस्थित है।

संस्कार जैसा उपन्यास केवल एक ब्राह्मण द्वारा ही लिखा जा सकता था। उपन्यास का महत्त्व और भी इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि यह एक अन्दर के व्यक्ति ने लिखा है, एक ऐसा व्यक्ति जो एक ऐसे समाज का प्रतिनिधित्व करता है जो कि अस्पृश्यता को मानता था। उपन्यास जाति प्रथा की घोर आलोचना करता है और बताता है कि इस प्रथा के लिए आधुनिक समाज में कोई स्थान नहीं है, साथ ही साथ यह भी सिद्ध करता है कि जाति प्रथा को कोई धार्मिक संरक्षण प्राप्त नहीं है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *श्रीनिवास, एम.वी. (1996), विलेज, कास्ट, जैन्डर एण्ड मैथड्, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली*
2. *मुखर्जी, मीनाक्षी (2005), संस्कार, कैलाश च, बरल, डी. वेंकटराव, सुरा पी. रथ (ed.), यू.आर. अनन्तमूर्ति, संस्कार : ए क्रिटिकल रीडर, पेनक्राफ्ट इन्टरनैशनल, दिल्ली।*
3. *अनन्तमूर्ति, यू.आर. (जुलाई 2005), मैं, एक ब्राह्मण, नदू ईन्टरनैश्नस्ट*
4. *अनन्तमूर्ति, यू.आर. (1999), संस्कार, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली*
5. *अनन्तमूर्ति, यू.आर. (2008), क्वेश्चन अनन्तमूर्ति ओमनीबस, अरविन्द कुमार पब्लिशर्ज, गुड़गांव*
6. *अनन्तमूर्ति, यू.आर. (2010) आथर्स नोट, भारतीपुरा, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली*
7. *अनन्तमूर्ति, यू.आर. (सितम्बर–अक्टूबर 2007) फाईव डैकेडस ऑफ माई राईटिंग, इंडियन लिटरेचर, 117*
8. *नाडकर्णी, एम.वी. (नवम्बर 2003) इज़ कास्ट सिस्टम इनट्रिसिक टू हिन्दूइज़म? डिमालिशिंग ए मिथ, इकोनोमिक पोलिटिकल वीकली 38, नं. 45, पेज 4783–4973*